'Vichār', Semi Annual Contextual Research Journal,
March, 2013, ISSN-0974-4118, Year 6, No. 2
Sri Jaya Nārāyan Postgraduate College,
University of Lucknow, India.
'The Tradition of Indian Folk Tales and Buddhist Jātaka Tales',
pp. 09-15

By Professor Upul Ranjith Hewawitanagamage, Dept. of Hindi Studies,
University of Kelaniya, Sri Lanka

Abstract

This paper mainly deals with the narrative tradition of the Indian sub-continent. Although the Jātaka tales are considered as tales belonging to Buddhism, according to the opinion of some scholars these are considered as folklore of India. By the way, this article throws a light on the evolution of the tradition of Indian Folk Tales. Further showing how far they have moderated and mixed with the Buddhist Jātaka tales in the context of religious edification after the considerable period of time of Buddha's parinirvāna. The 'Karma concept' is considered as the central point of Buddhist philosophy. However, the discussion of this concept is found in the tradition of Indian folk tales as well. We should discuss this further, about how the Karma concept became included within the folk tales of the tribal people who are living in the dense forests.

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक शोध पत्रिका
मार्च, 2013

आई.एस.एस.एन. 0974-4118

विचार

श्री जय नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सहयुक्त महाविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आई.एस.एस.एन. 0974-4118

वर्ष-छः अंक-दो

मार्च, 2013

विचार

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक शोध पत्रिका

श्री जय नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय

सहयुक्त महाविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विचार

अर्द्धवार्षिक सान्दर्भिक शोध-पत्रिका

वर्ष – छः | अंक – दो | मार्च, 2013

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

शोध पत्र/लेख — पृष्ठ संख्या

1. कालिदास और रवीन्द्रनाथ : एक तुलनात्मक विवेचना — 1
अवध प्रसाद बाजपेयी

2. भारतीय लोक कथा सम्प्रदाय तथा बौद्ध जातक कथायें — 9
उपुल रंजित हेवा हेवावितानगमगे

3. 'एक और नीलकण्ठ' की भाषा : शब्द संस्कार एवं वाक्य-संरचना के परिप्रेक्ष्य में — 16
उषा सिन्हा

4. अल्लामा इकबाल की शायरी पर एक नजर — 26
मीनू अवस्थी

5. काल के सरोकारों को विभिन्न संदर्भों में पहचानने वाले अद्भुत कवि-चंद्रकांत देव ताले — 32
वंदना श्रीवास्तव

6. कामायनी में आत्मवादी चिंतन — 43
मृदुला जुगरान तथा अशोक दत्त नौटियाल

7. बाजारवाद, स्त्री और हिंदी उपन्यास — 49
रविकांत

8. लोकपाल — 54
हरि प्रकाश

9. लोकपाल की प्रासंगिकता — 58
ब्रजेश चंद्र मिश्र

10. वैश्वीकरण एवं विश्व राज्य - श्री अरविंद दर्शन के संदर्भ में — 62
उपासना सिंह

11. मूल्य सहित शिक्षा एवं मानवाधिकार और कर्तव्य — 68
संजीव आनंद

12. प्राचीन भारत में यक्ष एवं नागपूजा
प्रीती वर्मा तथा नीलम चौधरी

13. भारत में विकास के गहराते अंर्तविरोध : सैद्धांतिक और व्यवहारिक विश्लेषण
अजय कुमार त्रिपाठी

14. उत्तराखंड कुमाऊ के साह समुदाय की सामाजिक संरचना एवं जीवन पथ के संस्कार
प्रेमा चौधरी

15. ग्रामीण भारत में पारिस्थितिक चिंतन एवं सतत् विकास : एक समालोचनात्मक दृष्टिकोण
विजयलक्ष्मी सक्सेना

16. गांधी और लोहिया : वैचारिक सामीप्य
विनोद चन्द्रा

संवाद :

17. पर्यावरण संरक्षण - एक गंभीर चुनौती
मेजर मनमीत कौर सोढ़ी

18. प्राकृतिक आपदा
अमित प्रकाश जोशी

19. अभी कठिन चुनौतियों से गुजरना पड़ेगा उत्तराखंड में
भानु जी

20. प्राकृतिक धरोहरों के पर्यावरणीय संकट : गांधीवादी दृष्टि
अंशुमालि शर्मा

21. उत्तरकाशी का उत्तर किसके पास है
कुमार प्रशांत

22. (पुराना चावल) प्रलय का शिलालेख
अनुपम मिश्र

23. खिसकते पहाड़, टूटते आशियाने
वी.के. जोशी

24. उत्तराखण्ड में प्राकृतिक आपदा : सीख के लिए एक नया अध्याय
राजेन्द्र सिंह

आई.एस.एस.एन. 0974-4118

विचार

अर्द्धवार्षिक सांदर्भिक शोध पत्रिका

वर्ष : छ. अंक : दो. मार्च 2013

भारतीय लोक कथा सम्प्रदाय तथा बौद्ध जातक कथाएँ

उपुल रंजित हेवा हेवावितानगमगे

यह सर्वमान्य है कि 'जातक' शीर्षक के अंतर्गत आने वाली कथाएँ बौद्ध धर्म की ही देन है। बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव ई.पू. छठवीं शताब्दी में हुआ था जिसके संस्थापक गौतम बुद्ध थे। भारतीय धार्मिक इतिहास में ई.पू. छठवीं शताब्दी का विशेष उल्लेख इसलिए किया जाता है कि जहाँ ब्राह्मण धर्म होते हुए अनेक धर्मों तथा दार्शनिक विचारों की भारी चर्चा होती रही अथवा बौद्धिक उफान सक्रिय रहा, जो चीन, ग्रीस, ईरान आदि में भी द्रष्टव्य है।[1] उनमें से बौद्ध धर्म ने भारतीय धर्म परम्परा को नया आयाम अवश्य दिया था,[2] जिसे वर्तमान में भी एक विश्वीय धर्म के रूप में मान्यता दी जाती है।[3]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रायः सभी विद्वान एक ही मत पर सहमत होते हैं कि 'जातक' शब्द संस्कृत 'जात' शब्द से निष्पन्न हुआ है, जो संस्कृत 'जन्' धातु से विकसित है और जिसका अर्थ 'जन्म' कहा जाता है।[4] आर.सी.चइल्डर्स के विवरण का उल्लेख करते हुए बी.सी.लो. कहते हैं कि 'जातक' शब्द का अर्थ 'जन्म' या 'उत्पत्ति' है, अपितु बौद्ध साहित्य में इसका अर्थ कुछ हद तक पृथक हो गया है, जैसे कि 'पूर्वजन्म या पूर्व अस्तित्व'। 'जातक कथा' का अर्थ यह हुआ है कि 'गौतम बुद्ध के पूर्व-जन्मों या पूर्व-अस्तित्वों से सम्बन्धित कथा'।[5] विन्टनिट्स् के विवरण में यह कहा गया है कि 'गौतम बुद्ध के अतीत भावों के जन्मों से सम्बन्धित कथा याने बोधिसत्त कथा"[6] 'जातक' कहलाता है।[7] गोकुलदास डे का कहना है कि मूलतः 'जातक' शब्द का अर्थ वह कथा है जिसमें बौद्ध धर्म से सम्बन्धित कुछ नैतिक तत्व निरुपित हैं।[8] फिर भी 'जातक' शब्द युगीन परिस्थितियों तथा पश्चातकालीन भिक्षु सम्प्रदायों के अनुसार विभिन्न अर्थ अपनाते हुए दिखाई देते हैं।[9] यद्यपि साधारणतः 'जातक' का अर्थ 'बोधिसत्व की जन्म कथा' है, तथापि इसका उपयोग त्रिपिटक (विनय, सुत्त, अभिधम्म) याने बौद्ध-धर्म-ग्रंथों याने पालि-धर्म-ग्रंथों (Buddhist Canon/Pali Canon) के सुत्तपिटक के खुद्दकनिकाय के अन्तर्गत आने वाले 15 ग्रन्थों में 10 दसवें स्थान पर उपस्थित 'जातक' याने 'जातकपालि' का परिचय देने के लिए भी किया गया है[11], जिसमें केवल ऐसी गाथाएँ ही हैं, उनसे सम्बन्धित गद्य कथा के बिना उनका कोई अर्थ नहीं निकाला जा सकता। सिंहली भाषा में 'जातक' शब्द का उपयोग उस पूरे ग्रंथ के लिए किया गया है, जिसमें कथा, गाथाएँ तथा उन पर की गयी टीका (भाष्य) अन्तर्गत् आती हैं।[12] यह मानना अनुचित न होगा कि पूर्व-जन्म-सिद्धान्त बौद्ध धर्म की केन्द्रीय संकल्पना होने हेतु उससे सम्बन्धित कथाओं को 'जातक' नाम इसलिए दिया गया होगा कि जिसमें 'उत्पत्ति' या 'जन्म' का अर्थ स्पष्टतः निरूपित है। यह भी विदित होता है कि 'जातक' का अर्थ युगीन परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा हो।

वस्तुतः एक कथा-सम्प्रदाय के दृष्टिकोण से जातक का मूल प्राग-बौद्ध-युग तक निश्चित किया जाता है। इसमें एक ओर भारतीय धर्म परम्पराओं में धर्मोपदेश दिये जाने की प्रक्रिया में विद्यमान सादृश्य पर ध्यान आकर्षित किया जाता है। अन्यतः भारतीय लोक साहित्य परम्परा से इसका अभिन्न सम्पर्क दृष्टिगत होने पर भी चर्चा की जाती है।

वेदों के प्रारम्भ से लेकर, जिसका प्रादुर्भाव ई.पू. 1000 माना जाता है, लगभग 40 शताब्दियों में विद्यमान धर्म-परम्पराओं के धर्मोपदेश दिये जाने की विधि में तो सादृश्य अवश्य दिखाई पड़ता है। बोधगम्य कथाओं, गाथाओं या कविताओं आदि के माध्यम से शिक्षा दिलाने या गम्भीर धार्मिक विषयों को सर्वसाधारण करने की प्रथा न केवल तद्युगीन भारतीय धार्मिक परम्पराओं द्वारा अपनायी गयी, बल्कि विश्व के अन्य धार्मिक परम्पराओं ने भी।[13] गोकुलदास डे द्वारा प्रस्तुत तथ्यानुसार प्राग-बौद्ध-युग की साधारण ग्रामीण जनता को शिक्षा दिलाने हेतु चारणों ने आख्यानों का उपयोग किया था, जो गाथाओं के रूप में थे।[14] वैदिक परम्परा के अधीन आने वाले वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण[15] आदि ग्रंथों में इसी कथा-परम्परा से सम्बन्धित विभिन्न कथाएँ मिल जाती हैं।[16] यह कहना अनुचित न होगा कि ये सभी कथाएँ भी तत्कालीन लोक समाज में प्रचलित लोक कथा परम्परा पर ही आधारित हैं।

प्राग-बौद्ध भारतीय समाज में ब्राह्मण-धर्म याने वैदिक-धर्म की स्थायिता निर्विवाद है। साथ-साथ, तद्युग में गैर-वैदिक श्रमण-सम्प्रदाय का अस्तित्व भी देखने को मिलता है, जो वैदिक-धर्म के प्रमुख विचारों से पूर्णतः पृथक था। ई.जे. तोमस् का मानना है कि यही 'श्रमण-प्रथा' याने 'श्रमण-संस्कृति' भारतीय समाज की प्रारम्भिक अवधि से ही प्रचलित थी।[17] कुछ भारतविदों का कहना है कि यह श्रमण सम्प्रदाय, जिससे बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म सम्बद्ध है, पूर्व-वैदिक तथा पूर्व-आर्य माना जाता है।[18] जगदीशचन्द जैन के विचारानुसार श्रमण-संस्कृति मुख्यतः निवृत्ति प्रधान थी, जबकि वैदिक-धर्म प्रवृत्तिप्रधान। अतः निवृत्ति प्रधान श्रमण संस्कृति से प्रवृत्तिप्रधान वैदिक-धर्म की ब्राह्मण संस्कृति से मेल नही खाती।[19] इस संस्कृति के अधीन मुख्यतः बौद्ध-धर्म तथा जैन-धर्म द्वारा कथाओं के सहारे अपने-अपने धार्मिक उपदेशों को अनुयायियों तक पहुँचाये जाने की प्रवृत्ति विद्यमान थी, जो विशेषतः भारत के पूर्व-क्षेत्र की लोकवार्ता पर आधारित थी।[20] लेकिन वे कथाएँ कैसी थीं ? इस सन्दर्भ में जगदीशचन्द्र जैन कहते हैं कि "श्रमण संस्कृति में अहिंसा, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य, आत्मदमन, कर्म-सिद्धान्त और जाति विरोध की मुख्यता प्रतिपादित की गयी है। अतः श्रमण-संस्कृति सम्बन्धी कथाएँ ब्राह्मणों के पौराणिक साहित्य पर आधारित न होकर सामान्य जीवन की लोकगाथाओं पर आधारित हैं।"[21] इस मत का समर्थन देने वाला विन्टनिट्स का विवरण इस प्रकार है : बौद्ध भिक्षुओं ने धर्मोपदेश देने के उद्देश्य से अनेक कथाओं, जैसी परीकथा, पशुकथा, चुटकुला इत्यादि का प्रयोग किया है।"[22] अधिकांशतः विद्वानों का यही मानना है कि जातक, उद्भव के रूप में तथा अन्तर्वस्तु के अनुसार पूर्णतया बौद्ध-धर्म से सम्बद्ध नहीं है, जिन्हें बौद्ध-धर्म के प्रचारकों द्वारा विस्तृत तथा समृद्ध लोक-वार्ता भंडार से गृहीत तथा रूपान्तरित किया गया है।[23]

एल.डी. बार्नेट का कहना है कि अधिकांश कथाएँ सचमुच, गौतम बुद्ध से भी प्राचीन है, और प्राचीनतम भारतीय लोक साहित्य से सम्बद्ध है।[24] गोकुलदास डे के विचारानुसार भी जातक, प्राग-बौद्ध-युग के भारतीय लोक-वार्ता भण्डार से सम्बद्ध किया गया है।[25] रिस् डेविडस् यह मानते हैं कि यह (जातक) सबसे प्राचीन, अतिशय सम्पूर्ण तथा अत्यन्त महत्वपूर्ण, वर्तमान में उपलब्ध लोकवार्ता संकलन है।[26] इस सन्दर्भ में विन्टनिट्स् द्वारा प्रतिपादित जातकों की अन्तर्वस्तु पर आधारित विवरण पर ध्यान देना अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। उनके वर्गीकरणानुसार पशुकथा, परिकथा, चुटकुला, उपन्यास, नैतिक कथा, कहावत, पावन आख्यान आदि इसके अन्तर्गत हैं, जिनमें से कुछ का प्रादुर्भाव अंशतः बौद्ध-धर्म से सम्बद्ध है और अधिकांशतः का सम्बन्ध भारतीय श्रमण-काव्य-सम्प्रदाय की मामूली सम्पत्ति से है।[27] इसका कारण बताते हुए वे आगे कहते हैं कि बौद्ध भिक्षुओं के रूप में जिन लोगों को संघ-समाज में प्रवेश दिया गया, वे समाज के विभिन्न स्तरों के थे, जो मजदूरों, कारीगरों तथा विशेष रूप से व्यापारियों से सम्बद्ध लोकप्रिय कथाओं तथा चुटकुलों से परिचित थे, और अन्यों, जिन्हें पुराने लोक गाथाओं, वीर गानों का ज्ञान था, साथ-साथ ब्राह्मणों, वन्य तापसों से पावन आख्यानों तथा पौराणिक कथाओं को सुनने वाले भी थे। बौद्ध-भिक्षुत्व प्राप्त किये जाने के पश्चात् ऐसे लोगों द्वारा कालान्तर में अपने

मन में स्थापित स्मृतियों को धर्म से जोड़ दिये जाने की प्रवृत्ति सम्भव है।[28]

तत्कालीन धार्मिक सम्प्रदायों पर इसी कथा-परम्परा के प्रभाव को सुस्पष्ट करते हुए जगदीशचन्द्र जैन कहते हैं कि लोक व्यवहार में प्रचलित कथाएँ किसी भाग या क्षेत्र जैसे बन्धनों से मुक्त थीं, साथ-साथ किसी वर्ग, कुल, वर्ण आदि तक सीमित न रहीं। इन्हें किसी-न-किसी धर्मगुरू या सन्त द्वारा अपनाया जा सकता था। बाद में यही कथाएँ उपदेशात्मक कथा साहित्य का अंग बनते हुए नैतिक कथाओं के रूप में बदल गयीं, जो समकालीन सामाजिक माँग के अनुरूप हुई है।[29] आनन्द कौसल्यायन थेरो ने यह अनुमान लगाया है कि "किसी अंश में तो अबौद्ध और बौद्ध साहित्य दोनों एक ही परम्परा के ऋणी हैं। प्राचीन काल का कथा साहित्य आज की तरह स्पष्ट रूप से बौद्ध और अबौद्ध विभाग में विभक्त नहीं था। उस समय एक ही कथा ने बौद्धों के हाथों बौद्ध रूप और अबौद्ध कलाकारों के हाथों पड़कर अबौद्ध रूप धारण किया होगा।"[30] ऐसी कथा परम्परा के क्रमिक विकास का और एक संकेत बौद्ध-धर्म-ग्रंथों में ही दृष्टिगत होता है। उदाहरणतः सुत्तपटिक के दीर्घनिकाय के सीलक्खन्धवग्ग के अन्तर्गत आने वाले ब्रह्मजालसुत्त में भिक्षुओं को प्रारम्भिक शील का विवरण देते हुए गौतम बुद्ध ने कहा है कि राजकथा, चोरकथा आदि व्यर्थ कथाओं में, गौतम बुद्ध द्वारा घोषित एक विषय में पारंगत भिक्षुओं और भिक्षुणियों की जो सूची दी गयी है, जिसमें धर्म-प्रवचन की कला में प्रमुख भिक्षु पुण्णमन्तानिपुत्त, कथा कहने की कला में निपुण भिक्षु कुमार कस्सप तथा पूर्वजन्म-विषयक प्रमुख भिक्षु सोभित आदि आते हैं।[37] इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन कथा-सम्प्रदाय के अनुसार कथा कहने तथा कथा सुनने की प्रक्रिया को बौद्ध धर्म ने पूरी तरह अपनाया है और पुनर्जन्म-विषय प्रमुख होने से बौद्ध के साथ 'जातक' के सम्बन्ध का भी एक स्पष्ट तथ्य मिल ही जाता है। समग्रतः यह कहा जा सकता है कि तत्कालीन समाज में प्रचलित ना-ना प्रकार के कथा-वर्गों से युक्त कथा-सम्प्रदाय होने की बात की पुष्टि अवश्य होती है। और इसी परम्परा से जातक का सम्बन्ध भी अवश्य स्वीकार करना पड़ता है।

मानव समाज के प्रारम्भ से ही कर्म याने क्रिया (action) की अच्छाई या बुराई के सन्दर्भ में चर्चा अवश्य होती रही, जो नीतिशास्त्र का विश्वीय सिद्धान्त बन गयी। प्रत्येक व्यक्ति की सभी क्रियाओं के फल अवश्य अच्छे या बुरे, इन दोनों में से किसी एक के अधीन आ गये। कहा जाता है कि प्रत्येक मानव समाज की नींव में अच्छाई या बुराई की संकल्पना अन्तर्निहित है, जो उस समाज की लोक कथाओं में परिलक्षित होती है।[38] ई.जे. तोमस् का मानना यही है कि प्रत्येक क्रिया के फल का निर्णय उसकी अच्छाई या बुराई की स्थिति पर निर्भर होती है।[39] यह कर्म-सिद्धान्त (doctrine of karma) सही और गलत संकल्पना का ही अत्यन्त विस्तृत प्रस्तुतीकरण मानना अनुचित नहीं है। यह निर्विवाद है कि कर्म-सिद्धान्त तथा पुनर्जन्म बौद्ध-धर्म की केन्द्रीय-संकल्पना है। जातकों की विषय-वस्तु का आधार भी यही है। उपर्युक्त प्रतिपादित 'जातक' शब्द के अर्थ विवरणों में भी इस बात की पुष्टि की गयी। बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बोधिमण्ड पर गौतम बुद्ध द्वारा अपने विमुक्ति-सुख का आनन्द लेते हुए भाषित निम्नांकित गाथा 'उदान' याने 'प्रीति-वाक्य' से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है।

'अनेक जाति संसारं - सन्धा विस्सं अनिब्बिसं
गहकारकं गवेसन्तो - दुक्खाजाति पुनप्पुनं
गहकारक दिट्ठोसि - पुनगेहं न काहसि
सब्बा ते फासुका भग्गा गहकूटं विसंखितं
विसंखार गतं चित्तं तण्हानं खय मज्झगा ती।'[40]

'दुखदायी जन्म बार-बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीर रूपी गृह को बनाने वाले) गृह-कारक को पाने की खोज

मैं निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृह-कारक! अब मैंने तुझे देख लिया। (अब) तू फिर गृह-निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गयीं, गृह-शिखर बिखर गया। चित्त निर्वाण प्राप्त हो गया; तृष्णा का क्षय देख लिया।

बौद्ध धर्म के अनुसार भवों में घूमने वाले सभी प्राणी प्रत्येक भव में अपने-अपने अच्छे-बुरे कर्मों के साथ ही चलते फिरते हैं। वर्तमान भव अतीत भव का ही अक्षुण्ण फल है। अन्ततः सभी घटनाएँ एक ही घटना क्रम की ही कड़ियाँ हैं। कर्म-सिद्धान्त की चर्चा केवल बौद्ध धर्म की ही देन नहीं है। इसकी चर्चा बृहदारण्यक तथा छान्दोग्य उपनिषदों में भी उपलब्ध है। फिर भी, बौद्ध-धर्म में कर्म-सिद्धान्त का विवरण न केवल उपनिषदों से पृथक ही था, बल्कि जैन-धर्म से भी। कुछ काल में प्रचलित कर्म से सम्बन्धित अनेक विचारों के संकेत त्रिपिटक में ही मिल जाते हैं। सुत्तपिटक के दीर्घनिकाय के सीलक्खन्धवग्ग में आने वाले सामञ्ञफलसुत्त में तत्कालीन आचार्यों द्वारा राजा अजातशत्रु के कर्म और फल से सम्बन्धित प्रश्नों पर दिये गये विवरणों से विदित होता है कि कर्म-संकल्प पर न केवल तत्कालीन धर्माचार्यों के बीच, बल्कि समाज के उच्चस्तरीय वर्ग से लेकर साधारण जनता तक अनवरत चर्चा होती रही।

कर्म-संकल्प की चर्चा का प्रभाव तत्कालीन कथा-साहित्य पर अवश्य पड़ा। यह विशद है कि कर्म और फल के अच्छे तथा बुरे परिणामों के बारे में लोगों को बोध दिलाने में कथाओं का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। क्योंकि, यह एक ऐसा तरीका था, जिससे किसी मनुष्य के जीवन में घटी अच्छी या बुरी घटनाओं को लेकर कर्म और फल के परिणाम विश्वसनीय रूप में प्रस्तुत किया जा सके। यहाँ पर गोकुलदास डे द्वारा प्रतिपादित तथ्य पर देना उचित प्रतीत समझता हूँ। उनके मतानुसार बुद्ध-युग से लेकर प्रथम-धर्म-संगीति तक की अवधि में कर्म-संकल्प पर बल देने वाली लोक कथाएँ तथा लोक गाथाएँ लोकप्रिय थीं, उन्हें धर्म-ग्रंथों में भी सम्मिलित किया गया था।

कर्म और फल से सम्बन्धित लोक कथाओं के सन्दर्भ में और एक तथ्य पर ध्यान आकर्षित करवाना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ, जिसके बारे में पहले किसी का ध्यान नहीं गया हो। आश्चर्य की बात यह है कि कुछ आदिवासी लोक कथाओं में भी कर्म और फल के परिणामों की चर्चा हुई है। यह एक विशेष बात समझनी चाहिए। अमीर हसन तथा शीमिन हसन द्वारा सम्पादित Folktales of Uttar Pradesh Tribes संज्ञक ग्रंथ में ऐसी आदिवासी लोक कथाएँ संगृहीत हैं, जिनमें कर्म और फल, पुनर्जन्म तथा पाप और पुण्य विषयक लोक कथाएँ आती है,[17] जो जातकों की अन्तर्वस्तु से सीधा सम्बन्ध रखती हैं। यहाँ यह जिज्ञासा होती है कि क्या कर्म-सिद्धान्त की चर्चा श्रमण-धर्म, उपनिषद आदि से भी पुरानी है? यदि यह ऐसा होता है तो हमें इतिहास के अन्धकार कोणों को उज्वलित करने का एक नया प्रकाश अवश्य मिल जाएगा। लोक कथाएँ एक 'वैकल्पिक इतिहास' मानी जाती हैं। ऐसी दृष्टि से देखा जाय तो, आदिवासियों की लोक कथाओं पर ध्यान देने से यह पता लगेगा कि भारतीय कथा साहित्य लोक कथा सम्प्रदाय से किस तरह प्रभावित हुआ है, और विशेषतः जातकों का लोक कथा सम्प्रदाय से किस प्रकार का सम्पर्क रहा। कृष्णदेव उपाध्याय ने ऐसा अनुमान लगाया है कि 'बृहतकथा' के रचयिता गुणाढ्यपण्डित ने मूल रूप में कथाओं को उन लोगों से सुना होगा, जो नगर से दूर रहने वाले ग्रामीण या वन्य लोग थे। क्या इससे भी लोक कथा सम्प्रदाय में आदिवासियों के योगदान का संकेत मिलता है ?

आशा है कि भावी अनुसन्धानकर्ता इस विषय क्षेत्र की ओर अपना ध्यान आकर्षित करें। इस सन्दर्भ में जगदीशचन्द्र जैन अपने ग्रंथ Prakrtit Narrative Literature में संकेत दिया है कि आदिवासियों के क्षेत्रों में-विशेषतः पश्चिम बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा-एक विस्तृत पर्यवेक्षण अवश्य किया जाना चाहिए। इसका तात्पर्य यह होगा कि एक तुलनात्मक अध्ययन से भारतीय कथा साहित्य इतिहास की सीमाओं को और भी विस्तृत किया जाए। समग्रतः यह स्पष्ट होता है कि जातकों के उद्भव के सन्दर्भ में भारतीय लोक कथा तथा गाथा परम्पराओं का अनन्य योगदान अवश्य रहा हो।

पाद टिप्पणियाँ :

1. Bagpat (Edi.) (1997) 2500 years of Buddhism [Forward by S.Radhakrishnan] p.v; cf.Vaidya, P.L. 'Origin of Buddhism', In 2500 years of Buddhism (1997) Bagpat, p.v. (Edi) p.8-17; शर्मा, हरद्वारी लाल (1990) लोकवार्ता विज्ञान I, पृ.319 (Singhal, D.P. (1972) India and World Civilization Vol.I, pp. 17-18
2. Vaidya, P.L. 'Origin of Buddhism' In 2500 years of Buddhism (1997) Bagpat, p.v. (Edi)
3. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 154
4. See, Monier-Williams, Monier(1986) Sanskrit-English Dictionary, p. 417
5. Law, B.C. (1930) A study of Mahavastu, p. 4
6. यह शीर्षक केवल बोधिसत्त संकल्प के उभरने के पश्चात प्रयोग में आया है।
7. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 113
8. De, Gokuldas (1951) Significance and Importance of Jatakas, p. 17
9. Ibid., pp. 66, 92-93
10. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.) (1985) जातक I पृ. 5
11. Winternitz, M.'Jataka' In Encylopedia of Religion and Ethics, Vol. VII, Hastings, James (Edi) (1959) p. 491
12. Godakumbure, C.E. (1996) Sinhalese Literature, p. 35
13. *जैन, जगदीशचन्द्र (1971) प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 167

    *Granoff, Phyllis (1998) The Forest of Thieves and the Magic Garden: An Anthology of Medieval Jain Stories, p. 4

    * Mishra, Jayakanta (1951) Introduction to the Folk Literature of Mithila (Part II - Prose), p.15
14. De, Gokuldas (1955) Democracy in Early Buddhist Samgha, p. 38
15. सत्येन्द्र (1949) ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ. 396
16. सांकृत्यायन, राहुल ; उपाध्याय, कृष्णदेव (संपादक) (1959) हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास शोडश भाग। प्रस्तावना। पृ. 21, 110
17. Thomas, E.J. (1953) History of Buddhist Thought, p. 11
18. Wijebandara, Chandima (1993) Early Buddhism : Its Religious and Intellectual Milieu, p. 4

19. जैन, जगदीशचन्द्र (1971) प्राकृत जैन कथा साहित्य, पृ. 95
20. Tawney, C.H. (Tr.) (1985) The Kathakoca or Treasury of Stories, [Intro.] p. xvii
21. जैन जगदीशचन्द्र (1971) History of Indian Literature Vol. II, p. 114
22. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 114
23. *Rahula Thero, Telwatte (1978) A Critical Study of the Mahavastu, p.88

    * Geiger, Wilhelm (1956) Pali Literature and Language, p. 32
24. Feer, M.L. (1963) A Study of the Jatakas: Analytical and Critical, p. ?
25. De, Gokuldas (1951) Significance and Importance of Jatakas, p. 2
26. Davids, T.W. Rhys (1973) Buddhist Birth Stories, [Intro.] pp.iii-iv
27. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 125
28. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 125
29. Jain, Jagdishchandra (1981) Prakrit Narrative Literature, p.181
30. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.) (1985) जातक I, पृ. 25
31. सांकृत्यायन, राहुल (1992) पालि साहित्य का इतिहास I, पृ. 17
32. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.) (1985) जातक I, पृ. 149; Cf. Cowell. E.B. (Edi) (2001) The Jataka, p. 18; पन्सिय पनस् जातक पॉत् वहन्से, (2001) (सिंहली), p.73
33. सांस्कृत्यायन, राहुल (1992) पालि साहित्य का इतिहास, पृ. 31
34. De, Gokuldas (1955) Democracy in Early Buddhist Samgha, p. 38
35. De, Gokuldas (1955) Democracy in Early Buddhist Samgha, p. 37-38 Cf. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 114
36. Winternitz, M. (1977) History of Indian Literature Vol. II, p. 114
37. De Gokuldas (1955) Democracy in Early Buddhist Samgha, p. 37-38
38. *Mukharji, Priyadarshi (1999) Chinese and Tibetan Societies through Folk Literature, p. xix

    *Dmitriyev, Yuri (1988) Man and Animals, p. 20
39. Thomas, E.J. (1953) History of Buddhist Thoughts, p. 107
40. पन्सिय पनस् जातक पॉत् वहन्से, (2001) (सिंहली), p.30
41. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (अनु.) (1985) जातक, पृ. 94

42. Akira, Hirakawa (1990) A History of Indian Buddhism, p. 18

43. Mc Dermott, James Paul (1984) Development in the Early Buddhist Concept of Kamma/ Karma, pp. 1-2; Cf. Akira, Hira Kawa (1990) A History of Indian Buddhism, p. 18

44. Wijebandara, Chandima (1993) Early Buddhism : Its Religious and Intellectual Milieu, pp. 163-166

45. सांकृत्यायन, राहुल (1992) पालि साहित्य का इतिहास, पृ. 19-23

46. De, Gokuldas (1951) Significance Importance of Jataka, p. 66

47. Hasan, Amir and Hasan, Seemin (1982) Folktales of Uttar Pradesh Tribes, pp. 30-31, 46-47, 117-118

48. सांकृत्यायन, राहुल ; उपाध्याय, कृष्णदेव (संपा.) (1959) हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, शोडश भाग, कृष्णदेव उपाध्याय कृत प्रस्तावना, पृ. 7-8 (Cf. Twaney C.H. (Tr.) (1968) The Ocean of Story Vol. I, [Foreword by R.C. Temple], pp. xi-xxvi

49. Jain, Jagdishchandra (1981) Prakrit Narrative Literature, p. 201

प्रोफेसर उपुल रंजित हेवा हेवावितानगमगे, हिन्दी अध्ययन विभाग, कैलणिय विश्वविद्यालय, श्रीलंका में अध्यक्ष पद पर कार्यरत हैं।